6

कथालोक*

वसीली सुखोम्लीन्सकी

जिम पियाजे ने बालक के संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न चरणों में मूर्त्त ज्ञान को अहम माना है। कथाकार बच्चों के लिए जब कहानी सृजित करता है, तो वह कहानी के हर एक पहलू को जीवंत करने का भरसक प्रयास करता है, ताकि बच्चे उस कहानी के पहलू पर अपने आपको महसूस कर सकें। उक्त आलेख कथा संसार की इसी जीवंतता पर आधारित है।

कथा-कहानियाँ, खेल, कल्पना- यह बालचिंतन का, उदात्त भावनाओं और आकांक्षाओं का जीवनदायी स्रोत है। हमारा कई वर्षों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि कथा-कहानियों के बिंबों के प्रभाव से बाल आत्मा में उत्पन्न होनेवाली सौंदर्यबोधात्मक, नैतिक और बौद्धिक अनुभूतियाँ विचारों के प्रवाह को सक्रिय बनाती है, जो मस्तिष्क को सक्रिय कार्य की प्रेरणा देता है, चिंतन के जीवंत 'द्वीपों' को सुदृढ़ तारों से जोड़ता है। कथा-कहानियों के बिंबों के ज़रिये शब्द अपनी सूक्ष्मतम छटाओं के साथ बालचेतना में प्रवेश करता है। वह बच्चे का आत्मिक जीवन का क्षेत्र, उसके विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम-चिंतन का सजीव यथार्थ बन जाता है। कथा-कहानियों के बिंबों द्वारा जगाई गई भावनाओं के प्रभाव में बच्चा शब्दों के माध्यम से सोचना सीखता है। ऐसी सजीव, ज्वलंत कहानियों के बिना, जो बच्चे की चेतना और भावनाओं पर छा जाएँ, मानव चिंतन और वाणी के निश्चित चरण के रूप में बालचिंतन और बाल वाणी की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बच्चों को इस बात से गहरा संतोष मिलता है कि उनके विचार कथा-कहानियों के संसार में रहते हैं। बच्चा एक ही कहानी को पाँच-दस बार सुन सकता है और हर बार उसे उसमें कोई नई बात दिख सकती है। कहानियों के बिंब सजीव, सुस्पष्ट तथा ठोस से अमूर्त की ओर पहला कदम है। मेरे छात्रों के आत्मिक जीवन में अगर कथा-कहानियों का एक पूरा काल न होता, तो उनमें शायद अमूर्त चिंतन की क्षमता इतनी अच्छी तरह न विकसित हो पाती। बच्चे खूब अच्छी तरह यह समझते हैं कि संसार में दुष्ट चुड़ैल या राजकुमारी मेंढ़की या राक्षस नहीं हैं, लेकिन वे इन बिंबों में भलाई और बुराई का मूर्त्त रूप देखते हैं। एक ही

* यह लेख पत्रिका *शिक्षा विमर्श* (जुलाई-दिसंबर 2005 अंक) से साभार लिया गया है।
(शिक्षा विमर्श (सं.-विश्वंभर) दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर-302025)

कहानी को सुनाते हुए वे अच्छाई और बुराई के प्रति अपना निजी रुख व्यक्त करते हैं।

कथा-कहानियों को सौंदर्य से अलग नहीं किया जा सकता। वे बच्चों में सौंदर्य की भावना विकसित करती हैं, जिसके बिना आत्मा की उदात्तता लोगों की यातनाओं, दु:ख-दर्द के प्रति हृदय की संवेदनशीलता नहीं हो सकती। कथा-कहानियों की बदौलत बच्चा न केवल मस्तिष्क से, बल्कि हृदय से भी संसार को जानता समझता है और वह केवल जानता-समझता ही नहीं, बल्कि चारों ओर के संसार की घटनाओं पर प्रतिक्रिया भी दर्शाता है, भलाई और बुराई के प्रति अपना रवैया भी प्रकट करता है। कथा-कहानियों में बच्चे पहली बार न्याय और अन्याय की बात सुनते और समझते हैं। बच्चे के पहले विचार और धारणाएँ भी कथा-कहानियों की मदद से बनते हैं। बच्चे विचार को केवल तभी समझ पाते हैं, जबकि वह ज्वलंत बिंबों में मूर्त्तिमान हो।

बच्चों में मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना विकसित करने के लिए कथा-कहानियाँ अद्वितीय साधन हैं। कहानी का देशभक्तिपूर्ण विचार उसके अंतर की गहनता में निहित होता है, सदियों से लोग जो कथा-कहानियाँ बनाते आए हैं, उनके बिंब बच्चों को मेहनतकश जनता की सशक्त सृजन भावना का, जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण, उसके आदर्शों और आकांक्षाओं का आभास दिलाते हैं। लोककथा में बच्चों में मात्र इसीलिए ही मातृभूमि के प्रति प्रेम जगाने की शक्ति होती है क्योंकि वह जनगण द्वारा रची हैं। जब हम कीयेव के सोफ़िया मठ में अनुपम भित्तिचित्रों को देखते हैं, तो हम उन्हें जनजीवन के एक अंश के रूप में, जनप्रतिभा के सृजन के रूप में ग्रहण करते हैं और हमारे मन में जनता की सृजन भावना, उसके विचार, उसके कौशल पर गर्व की भावना जागती है। बालआत्मा पर लोककथा का प्रभाव भी कुछ ऐसा ही होता है। लगता है कि लोककथा का कथानक आम जीवन की घटना पर ही आधारित है। दादा-दादी ने शलगम उगाया, दादा ने भेड़िए को धोखा देने की सोची, सो पुआल का बछड़ा बनाया, परंतु लोककथा का हर शब्द अमर भित्तिचित्र पर हल्की रेखा के समान है, हर शब्द में, हर बिंब में जनमानस की सृजन शक्ति व्यक्त होती है। लोककथाएँ लोक संस्कृति की आत्मिक संपदा हैं, जिन्हें देखते-समझते हुए बच्चा अपने हृदय से अपने जनगण का बोध पाता है।

'खुशियों का स्कूल,' खुलने के तीन महीने बाद हमने अपना 'कथालोक' बनाया। बड़े छात्रों की मदद से एक कमरे में ऐसी चीज़ें बना दीं, जिनके बीच बच्चों को लगे, मानो वे कथा-कहानियों के बिंबों से घिरे हुए हैं। हमें ऐसा वातावरण बनाने के लिए काफ़ी मेहनत करनी पड़ी, जहाँ की हर चीज़ साँझ के झुटपुटे की और उन कहानियों की, जो कभी माँ ने सुनाई थीं, याद दिलाए। एक कोने में हमने दुष्ट चुड़ैल की झोंपड़ी बनाई, जो कहानी के अनुसार मुर्गी की टाँगों पर खड़ी थी। उसके चारों ओर ऊँचे पेड़ और ठूँठ थे। झोंपड़ी के पास ही लोककथाओं के दूसरे नायकों की आकृतियाँ थीं- चालाक लोमड़ी, भूरा भेड़िया। दूसरे कोने में दादा-दादी का घर। आसमान में हंस थे, जो

अपने परों पर उक्राइनी लोककथा के छोटे-से लड़के को चुराए ले जा रहे थे। तीसरे कोने में नीला सागर-महासागर था, जिसके किनारे पर नेक बूढ़े और चिढ़चिढ़ी बुढ़िया की टूटी-फूटी झोंपड़ी थी। दहलीज़ के पास लकड़ी का टूटा हुआ टब रखा था। बुड्ढा-बुढ़िया एक लट्ठे पर बैठे थे और समुद्र में सुनहरी मछली तैर रही थी। चौथे कोने में शीतकालीन वन था, जिसमें हिम के टीले बन गए थे, और उनके बीच छोटी-सी बच्ची बर्फ़ में धँसती हुई जा रही थी। दुष्ट सौतेली माँ ने उसे जंगल से बेरियाँ लाने भेजा था... छोटी-सी झोंपड़ी की खिड़की में से बकरा झाँकता था। एक ओर बड़ा-सा दस्ताना रखा था, जिसमें चूहे का घर था। प्लाईवुड से हमने एक बड़ा ठूँठ बनाया था, जिस पर गुड़ियाएँ रखी थीं- नन्हीं-मुन्नी बच्ची, खरगोश, लोमड़ी, भेड़िया, भालू, पुआल का बछड़ा, लाल टोपीवाली लड़की।

यह सब हमने अपने हाथों से बनाया था। मैं आकृतियाँ काटता था, तस्वीरें बनाता और चिपकाता था, बच्चे मेरा हाथ बँटाते थे। मैं उस वातावरण के सौंदर्यात्मक पहलू को बहुत महत्वपूर्ण समझता था, जिसमें बच्चे कथा-कहानियाँ सुनेंगे। कमरे में हर तस्वीर, प्रत्येक दृश्यबिंब कहानियों के शब्दों के प्रति बच्चों की ग्रहणशीलता बढ़ाता था, कहानी के विचार को अधिक गहराई से उजागर करता था। कहानियों के कमरे में रोशनी का भी अपना महत्त्व था। जब राजकुमारी मेंढकी की कहानी सुनाई जाती, तो जंगल में छोटी-छोटी बत्तियाँ जलती थीं। कमरे में हरा झुटपुटा होता था, जो उस वातावरण का सृजन करता था, जिसमें कहानी की घटनाएँ होती हैं।

कहानियों के कमरे में मैं बच्चों को बहुत ज़्यादा नहीं ले जाता था- हफ़्ते में एक बार या दो हफ़्तों में एक बार। सौंदर्य पिपासा की अतितृप्ति नहीं की जानी चाहिए। जहाँ अतितृप्ति होती है, वहाँ नाक-भौंह चढ़ाने की प्रवृत्ति, छिछोरी निराशाएँ, बोरियत और वक्त जाया करने के साधनों की खोज शुरू हो जाती है।

शरद और जाड़ों में संध्या समय हम अपने कहानियों के कमरे में जाते हैं। साँझ के झुटपुटे में कथा-कहानियाँ सुनने में बच्चों के लिए विशेष आकर्षण होता है। ऐसा आकर्षण और किसी समय, उदाहरणत: दोपहर को नहीं होता। बाहर अँधेरा छाता जा रहा होता है। हम कमरे में रोशनी नहीं करते, झुटपुटे में बैठे रहते हैं। सहसा एक कोने में बनी झोंपड़ी में बत्ती जल उठती है, आकाश में तारे चमकने लगते हैं और जंगल के पीछे से चंद्रमा निकलता है। कमरे में मंद-मंद प्रकाश फैल जाता है, कोनों में अँधेरा और भी घना हो जाता है। मैं बच्चों को दुष्ट चुड़ैल की लोककथा सुनाता हूँ। यों तो मेरे शब्दों में बच्चों के लिए कोई भी नई बात नहीं है, लेकिन उनकी आँखों में विमुग्धता की चमक है। बच्चे कहानी के नायकों के दु:ख में दु:खी होते हैं, खुशी में खुश होते हैं। उन्हें बुराई से नफ़रत होती है और भलाई का वे बड़े उत्साह से स्वागत करते हैं। दुष्ट चुड़ैल, भोली-भाली बच्ची अल्योन्का और हंसों की आकृतियाँ उनकी कल्पना में सजीव हो उठती हैं। उन्हें लगता है कि वे सब भी ऐसे जीव हैं,

जो सोच सकते हैं, सुख-दु:ख महसूस कर सकते हैं। ये बालकथाएँ बच्चों के लिए अजीबोगरीब, रोमांचक घटनाओं का विवरण ही नहीं होती हैं, उनके लिए तो यह एक पूरा संसार होता है, जिसमें वे रहते हैं, संघर्ष करते हैं, बुराई का अपनी अच्छाई से मुकाबला करते हैं। कथा-कहानियों में बच्चे की आत्मिक शक्ति को शब्दों में अभिव्यक्ति मिलती है, वैसे ही जैसे खेलकूद में गति और संगीत में धुन उसे व्यक्त करती है। बच्चा कहानी सुनना ही नहीं चाहता है, बल्कि सुनाना भी चाहता है, जैसे कि वह गीत सुनना ही नहीं, बल्कि गाना भी चाहता है। खेल देखना ही नहीं, खेलना भी चाहता है।

कुछ दिन बीतने पर बच्चे पूछने लगते हैं-"'कथालोक' कब चलेंगें?" हर्षमय क्षणों की प्रतीक्षा में बाल हृदय पुलकित होता है। हम फिर साँझ के झुटपुटे में "कथालोक" में जाते हैं। फिर से पहले मैं कहानी सुनाता हूँ और उसके पश्चात् बच्चे सुनाते हैं। ऐसे क्षणों में सबसे शर्मीले बच्चे भी निडर और दृढ़संकल्प हो जाते हैं। जो बच्चे आम बोलचाल में दो शब्द भी ठीक तरह से जोड़कर नहीं बोल पाते, वे भी कहानी सुनाते हुए धाराप्रवाह बोलने लगते हैं। नीना, पेत्रिक, ल्यूदा, स्लावा, वाल्या जैसे बच्चे, जिनके चिंतन और वाणी के विकास में कई कठिनाइयाँ हैं, वे भी कहानियाँ सुनाते हैं।

हर बार जब हम 'कथालोक' में आते हैं, तो बच्चों का खेलने का मन करता है। लड़के-लड़कियाँ सभी अपना प्यारा खिलौना, गुड्डा-गुड़िया ढूँढ लेते हैं। खेल सृजनात्मक कार्य बन जाता है: लड़के-लड़कियाँ कथा-कहानियों के नायक बन जाते हैं और उनके हाथों में जो खिलौने होते हैं, वे उनके विचारों और भावनाओं को अधिक अच्छी तरह व्यक्त करने में सहायक होते हैं। एक बच्चा पुआल के बछड़े को उठा लेता है, दूसरा दादी-गुड़िया को तीसरा दादा- गुड्डे को– और वे लोककथा के संसार में पहुँच जाते हैं। वे कहानी के शब्दों को ही नहीं दोहराते, बल्कि अपनी कल्पना से उसमें नई-नई बातें जोड़ते जाते हैं। कुछ बच्चियाँ यों ही गुड़ियों से खेलना चाहती हैं। एक बच्ची गुड़िया को छोटे-से खटोले में लिटाकर उसे लाड़-प्यार करती है, लोरी सुनाती है। दूसरी बच्ची की नन्ही-मुन्नी गुड़िया बीमार पड़ गई है। वह उसकी टहल करती है।

मुझे इस बात पर कोई उलझन नहीं थी कि लड़के-लड़कियाँ कई बरसों तक गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहे। यह कोई 'बचपना' नहीं है, जैसा कि कुछ अध्यापक सोचते हैं। गुड्डे-गुड़ियों में उनका सजीव बिंब देखते हैं, जिन्हें फ्रांसीसी लेखक सेंट-एक्जुपेरी (1900-1944) के शब्दों में वे '**अपना बनाना**' चाहते हैं। हर बच्चा यह चाहता है कि उसका अपना कोई हो, जिसे वह बेहद प्यार करे। मैं बड़े ध्यान से यह देखता था कि बच्चों और उनके प्यारे गुड्डे-गुड़ियों के बीच कैसे आत्मिक संबंध बनते हैं। मैं इस बात से खुश था कि लड़के भी काफ़ी देर तक गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहते थे। कोस्त्या का प्यारा गुड्डा था– बूढ़ा मछेरा। गुड्डे की टाँग बार-बार टूट जाती थी, आखिर कोस्त्या ने लकड़ी की टाँग लगा दी और साथ ही मछेरे के हाथ में गाँठदार लाठी भी थमा दी। अब वह

लाठी के सहारे नदी पर मछली पकड़ने जाता था। कोस्त्या को अपने बूढ़े दोस्त से बातें करने का शौक था। वह उसे बताता था कि कहाँ कौन-सी मछली होती है। लरीसा की प्यारी गुड़िया थी– दादी और पोती। लरीसा ने दादी के लिए ऐनक बना दी, उसके पैरों तले गरम नमदा बिछा दिया, कंधों पर दुशाला ओढ़ा दिया। वाल्या के पास भी दो गुड़ियाँ थीं– छोटी सी बिल्ली और चुहिया। वाल्या हर हफ़्ते बिल्ली के गले में नया रिबन बाँधती थी और चुहिया के लिए न जाने क्यों हरा बिछौना ले आई थी।

'कथालोक' में बच्चे कभी कल्पना की उड़ाने भरते न थकते थे। किसी नई वस्तु को देखते ही उनकी कल्पनाशक्ति उसे किसी दूसरी वस्तु के साथ जोड़ देती। उनके बारे में अजीबोगरीब बातें बच्चों के दिमाग में उठतीं, कल्पना उड़ान भरने लगती, विचारों की धारा फूट निकलती, आँखें चमकने लगती और वाणी सरिता मुक्त होकर बहने लगती। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं यह कोशिश करता था कि 'कथालोक' के अलग-अलग कोनों में तरह-तरह की ऐसी चीज़ें रखी हों, जिनके बीच कोई वास्तविक या काल्पनिक संबंध स्थापित किया जा सके। मुझे यही चिंता थी कि बच्चे कल्पना करें, सृजन करें, नई-नई कहानियाँ रचें। एक कोने में एक टाँग पर खड़े बगुले के पास ही छोटा-सा, सहमा-सहमा-सा बिलौटा रखा हुआ था। बच्चों ने इन दोनों के बारे में कई कहानियाँ गढ़ीं। एक जगह छोटी-सी नाव रखी हुई थी और उसके पास ही मेंढ़क बैठा था- इन्हें तो देखते ही किसी कहानी में जोड़ने को मन होता था। एक छोटा-सा भालू माँद में से झाँक रहा था और पास ही मच्छर और मक्खी थे, जो भालू की तुलना में बेहद बड़े थे (बालकथाओं में ऐसा संभव है)। एक छोटा-सा सूअर और उसके पास साबुन और पानी की बाल्टी पड़ी हुई थी– यह सब देखकर बच्चे मुस्कराते ही नहीं थे, बल्कि यह उनकी कल्पनाशक्ति को जगाता था।

जब मैं अपने इस प्रयास में सफ़ल रहता था कि ऐसा बच्चा, जिसके चिंतन में गंभीर कठिनाइयाँ थीं, वह कोई कहानी गढ़ ले, अपनी कल्पना में आस-पास की कुछ चीज़ों के बीच संबंध जोड़ ले, तब मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता था कि बच्चे ने सोचना सीख लिया है। मैं पहले भी इस बात का ज़िक्र कर चुका हूँ कि वाल्या के चिंतन को सक्रिय बनाना और स्मरणशक्ति सुदृढ़ करना कितना कठिन कार्य था। उसके चिंतन को सक्रिय बनाने का एक साधन था– चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच संबंधों के सहसा दिखाई दे जाने पर बच्चों के मन में उठने वाली विस्मयविमुग्धता की भावना। एक दूसरा उतना ही महत्वपूर्ण साधन था– कथा-कहानियाँ। वाल्या बहुत देर तक कोई कहानी खुद नहीं सोच सकी थी और मैं इस बात पर परेशान था। पढ़ाई के तीसरे साल में कहीं वाल्या ने मेंढकी, नाव और मछली की कहानी बनाई। यह रही वह कहानी– 'मेंढ़की ने देखा, नदी के किनारे नाव खड़ी है। नाव मछेरे दादा की थी। वे उसे

खड़ी करके गाँव में रोटी लेने गए हुए थे। मेंढकी का नाव में सैर करने का मन हुआ। वह अपने डबरे में से निकलकर नाव में जा चढ़ी और चप्पू सँभाल लिया। तभी नदी में से एक मछली बोली- 'मेंढकी री! मेंढकी!! यह तू क्या कर रही है? तू तो छिछले डबरे में रहती है, मगर नाव को गहरा पानी चाहिए।' मेंढकी ने मछली की बात नहीं सुनी और नाव को अपने डबरे की ओर बढ़ा दिया। नाव बोली– 'मेंढकी! मेंढकी!! तू मुझे कहाँ ले जा रही है?' मेंढकी ने जवाब दिया– 'अपने डबरे में। आज सारे मेंढक देख लेंगे, कैसे मैं नाव चलाती हूँ।' नाव मुस्करा दी और मन ही मन सोचने लगी– 'अभी दादा आएँगे, तुझे नाव चलाना सिखा देंगे।' बड़ी मुश्किल से मेंढकी नाव को डबरे में घसीट लाई। नाव कीचड़ में फँस गई और आगे बढ़ती ही नहीं थी। मेंढकी ने बड़ा ज़ोर लगाया, पर नाव अपनी जगह से टस-से-मस न हुई। उधर सारे मेंढक-मेंढकियाँ डबरे में से निकल आए थे– मेंढकी ने डींग जो हाँकी थी– 'देखो, मैं कैसे नाव चलाती हूँ। अब मेंढकी बहुत शर्मींदा हुई। वह डबरे में कूद पड़ी और चारों ओर कीचड़ उछला। सारे मेंढक मेंढकियाँ ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। तभी मछेरे दादा आ गए। वे नाव डबरे से खींच ले गए। मेंढक-मेंढकियाँ डर के मारे हरी-हरी काई में जा छिपे। शाम को हिम्मत करके वे बाहर निकले और फिर खिलखिलाकर हँसने लगे। तब से रोज़ रात को वे हँसते हैं। शाम से सुबह तक दलदल में मेंढकों की टर्र-टर्र होती रहती है। वे शेखीबाज़ मेंढकी पर हँसते हैं।'

कहानियाँ रचना बच्चों के लिए काव्यमय सृजन की एक सबसे रोचक विधा है। साथ ही यह बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण साधन है। अगर आप चाहते हैं कि बच्चे रचना करें, कलात्मक बिंबों का सृजन करें, तो अपनी सृजन ज्वाला की कम-से-कम एक चिंगारी ही बालचेतना में पहुँचा दीजिए। अगर आप स्वयं सृजन नहीं कर सकते हैं या आप बच्चों की अभिरुचियों के संसार में उतरना व्यर्थ की बात समझते हैं, तो कुछ नहीं हो सकता।

'कथालोक' में तीनों का अपना प्यारा गुड्डा था– ढलाई कारखाने का मज़दूर। उसके चेहरे पर पिघले लोहे की चमक थी। बच्चों को ढलाई कारखाने के मज़दूरों से हमारी भेंट याद रही थी और अब तीन साल बाद उन्होंने अग्निल नदी की कहानी रची थी।

'विशाल भट्टी के सामने महाबली पुरुष खड़ा है। उसने लोहा गलाया है। लोहा उबल रहा है। उसमें बुलबुले उठ रहे हैं। महाबली पुरुष भट्टी का पट खोलता है और अग्निल नदी बह निकलती है। वह बहती जाती है और कहती जाती है, 'लोगो! देर नहीं करो, जल्दी से तपा लोहा ले लो और उससे वे सब चीज़ें बना लो जो तुम्हें चाहिए। सयाने मज़दूर अग्निल नदी के पास आते हैं, पिघला हुआ लोहा लेते हैं, उसे रेत में उड़ेलते हैं और लोगों के लिए ज़रूरी चीज़ें बनाते हैं।'

फासिज़्म के विरुद्ध युद्ध और सोवियत जनता की वीरतापूर्ण विजय ने हमारे जनगण के सारे आत्मिक जीवन पर, उसकी स्मृति में गहरी छाप छोड़ी है। मातृभूमि की रक्षा करने

वाले वीर बच्चों की कल्पना परीकथाओं के महाबली पुरुषों के समान हैं। बच्चे उनके बारे में ज्वलंत और भावपूर्ण कहानियाँ रचते हैं। हमारे जनगण के महावीरों की जितनी भी कहानियाँ बच्चों ने बनाईं, उन सब में सोवियत लोगों के साहस, उदात्तता और अजेयता का विचार पिरोया गया था। दान्को की रची एक कहानी देखिए–

'माँ बेटे को फौज में विदा कर रही थी। उसने बेटे से कहा– 'बेटा! अपनी जन्मभूमि की मुट्ठी भर मिट्टी साथ ले लो। सदा याद रखना कि तुम्हें इसकी रक्षा करनी है! बेटे ने अपनी जन्मभूमि की मुट्ठी भर मिट्टी रेशम की लाल गुत्थी में भर ली। वह इस गुत्थी को सदा सीने से लगाए रखता था। दुश्मनों ने हमारे देश पर हमला कर दिया। बेटे ने सीमा पर दुश्मनों का सामना किया। वह उन पर मशीनगन से गोलियाँ बरसा रहा था। दुश्मन नदी में गिर रहे थे। बेटा एक कदम भी पीछे नहीं हटा। अचानक दुश्मन की गोली उसके सिर में आ लगी, आँखों में खून भर गया, हाथ कमज़ोर पड़ गए। तभी उसे अपने घर की मिट्टी की याद आई। लाल गुत्थी को छूते ही उसके हाथों में असाधारण शक्ति आ गई। महावीर फिर से गोलियाँ चलाने लगा। दुश्मन नदी में डूब गए। तभी सहायता भी आ गई– तेज़ विमान और शक्तिशाली टैंक।'

मेरे पास अनेक ऐसी कहानियाँ लिखी हुई हैं, जो बच्चों ने साँझ के झुटपुटे में रची थीं। मेरे लिए ये कहानियाँ विचारों की ज्वलंत शिखाओं के रूप में प्रिय हैं, जो मैं बाल हृदयों में जगा सका था। अगर बच्चे कहानियाँ न रचते, यह सृजनात्मक कार्य न करते, तो अनेक बच्चों की वाणी में प्रवाह न होता, उनका चिंतन अव्यवस्थित होता। मैंने यह पाया कि बच्चों की सौंदर्यबोधात्मक भावनाओं और शब्द भंडार के बीच सीधा संपर्क है। सौंदर्य की अनुभूति शब्दों को भावनात्मक रंग प्रदान करती है। कहानी जितनी दिलचस्प होती है, कहानी सुनते समय बच्चों का परिवेश जितना अधिक असाधारण होता है, उनकी कल्पना की उड़ान भी उतनी ही सशक्त होती है और उनके रचे बिंब उतने ही अप्रत्याशित होते हैं। साँझ के झुटपुटे में मेरे छात्रों ने दसियों कहानियाँ रचीं, जिन्हें 'साँझ के झुटपुटे की कहानियाँ' शीर्षक से हस्तलिखित संग्रह में बाँधा गया है।

'साँझ के झुटपुटे की कहानियों में पशु-पक्षियों और फूलों-पौधों के बारे में कई रोचक कहानियाँ हैं। फूलों की कहानियाँ रचने में बच्चों को भी और मुझे भी बड़ा आनंद मिला। मैं बच्चों को इंसान के भावात्मक जीवन के बारे में बताता था। यह बताता था कि कैसे लोग अपनी भावनाओं को फूलों के बारे में गीतों और किंवदंतियों में व्यक्त करते आए हैं। मैं कहानी की शुरुआत करता था और आगे बच्चे अपनी कल्पना से अनोखे, सजीव बिंबों का सृजन करते चले जाते थे।

हर दो-तीन महीने बाद हम 'कथालोक' के हर कोने में नई सजावट करते थे– प्लाईवुड से नई आकृतियाँ, पेड़, झाड़ियाँ काटते थे, परीकथाओं के महल और झोंपड़ियाँ बनाते थे। बच्चों ने पेपरमशी से कहानियों के नायकों की आकृतियाँ बनाना सीख लिया। इससे कहानियों की दुनिया

और भी समृद्ध हो गई। हमने उक्राइनी लोककथा '*भाई इवान*', झुकोव्स्की की '*सोती रानी*', अक्साकोव की '*लाल फूल*', दाल की '*पैने दाँतों वाली चुहिया और अमीर गौरेया*', गार्शिन की '*मेंढकी की यात्रा*', डेनमार्क के हांस एंडरसन की '*बर्फ़ की रानी*', जर्मनी के जैकब ग्रिम और विल्हेल्म ग्रिम की '*ब्रेमन के गवैये*', फ्रांस के शार्ल पेर्रो की '*निद्रामग्न सुंदरी*', रूसी लोककथा '*सुंदरी मार्या और वान्या*', स्वीडन की लोककथा '*घर की कील*' तथा जापानी लोककथा '*कुबड़ी गौरेया*' के लिए आकृतियाँ बनाईं। जिस तरह हमें खुशियाँ प्रदान करनेवाले प्रिय व्यक्ति की छवि हमारी चेतना में सदा के लिए अंकित हो जाती है, उसी तरह बच्चों के आत्मिक जीवन में इन कहानियों ने अपना स्थान बना लिया। बच्चों को जीवन भर के लिए इन कहानियों का एक-एक शब्द याद हो गया, जबकि उनसे कभी किसी ने इन्हें याद करने को नहीं कहा। जब शब्द अपने अद्वितीय सौंदर्य से, अपनी छटाओं से बाल हृदय को उत्तेजित करते हैं, तो वे सदा के लिए याद हो जाते हैं। इससे स्मरणशक्ति पर कोई ज़ोर नहीं पड़ता, उलटे वह इससे और भी तीव्र हो जाती है।

पहली बार किसी नई कहानी को कहना-सुनना बच्चों के जीवन में बहुत बड़ी घटना होती है। मैं कभी नहीं भूलूँगा कि कितने उत्साह, उमंग के साथ बच्चों ने एंडरसन की कहानी 'बर्फ़ की रानी' के लिए अपने '*कथालोक*' में सजावट की थी। तब बच्चे दूसरी कक्षा में पढ़ते थे। कहानी की घटनाएँ ढलवाँ छतों वाले मकानों, ऊँचे-ऊँचे टीलों के बीच बने बर्फ़ की रानी के महल में होती हैं। बर्फ़ीले मैदानों में हिम के ढेरों के बीच हिरन तेज़ी से दौड़ता जाता है। बच्चों ने यह सब अपने हाथों से बनाया। जाड़े की संध्या को सब बच्चे 'कथालोक' में इकट्ठे हुए। मकानों की खिड़कियों में रोशनी हो गई। आसमान से बर्फ़ गिर रही थी। हमारे चारों ओर साँझ का झुटझुटा था। बच्चे साँस रोके कहानी सुन रहे थे... कहानी खत्म हो गई, पर बच्चों ने फिर से सुनाने का अनुरोध किया। जितनी बार बच्चों ने कहा, उतनी बार मैंने कहानी सुनाई शब्दों के प्रति बच्चों का यह आकर्षण, यह विमुग्धता मेरे लिए अमूल्य उपहार थे। बच्चे बार-बार 'बर्फ़ की रानी' की कहानी सुनना चाहते थे। इसलिए नहीं कि उन्हें उसके शब्द याद करने थे, बल्कि इसलिए कि वे उनके लिए आश्चर्यजनक संगीत की तरह ध्वनित होते थे।

शिक्षक सदा यह सोचता रहता है– किस तरह बच्चों को अपनी मातृभाषा का गहन ज्ञान प्रदान किया जाए, मातृभाषा के शब्दों को किस तरह उसके आत्मिक जीवन का ऐसा अंश बनाया जाए कि वे तेज़ छैनी भी और विविधतापूर्ण रंगपट्टिका भी और सत्य का ज्ञान पाने का सूक्ष्म उपकरण भी बन जाएँ। भाषा चिंतन और, विचारों की भौतिक अभिव्यक्ति है और बच्चा उसे केवल तभी जान सकेगा, जबकि अर्थ के साथ-साथ वह उज्ज्वल भावनात्मक रंगत को भी, शब्दों में स्पंदित होते संगीत को भी ग्रहण करेगा। शब्द के सौंदर्य की अनुभूति के बिना बच्चे की बुद्धि उसके अर्थ के गूढ़ पहलुओं को नहीं समझ पाएगी। सौंदर्य की अनुभूति तो

कल्पना की उड़ान के बिना, उस सृजन में, जिसका नाम है– बालकथाएँ, बच्चे के भाग लिए बिना हो ही नहीं सकती। बालकथाएँ सक्रिय सौंदर्यबोधात्मक सृजन हैं, जिनमें बच्चे के आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्र भाग लेते हैं– उसकी बुद्धि, भावनाएँ, कल्पनाशक्ति और इच्छाबल। कहानी कहने के साथ यह सृजन आरंभ होता है और इसका उच्चतम शिखर तब होता है, जब बच्चे कहानी को खेलते हैं।

हमारे 'कथालोक' में ही कठपुतली थियेटर और नाटक मंडली का जन्म हुआ। यहाँ बच्चों ने पहली बार एक उक्राइनी लोककथा खेली, जिसमें एक दस्ताने में चूहा और दूसरे बहादुर जानवर मिलकर रहने लगते हैं। फिर बड़े जोश के साथ बच्चों ने राजकुमारी मेंढकी की कहानी और कुबड़ी गौरेया की जापानी लोककथा खेली। चौथी कक्षा में बच्चों ने मिलकर संगीतकार टिड्डी की कहानी बनाई और उसकी भूमिकाएँ अदा कीं।

'कथालोक' में मैंने बच्चों को पहली बार रॉबिन्सन क्रूसो की कहानी, '*म्यूनहाजन के कारनामे*', '*गुलीवर की यात्राएँ*', '*ज़ार सुल्तान का किस्सा*' और '*यान्को संगीतकार*' कहानी– ये सब पुस्तकें पढ़कर सुनाईं। बच्चे जीवनभर जाड़ों की उन संध्याओं को नहीं भूलेंगे, जब खिड़की के बाहर बर्फ़ीली आँधी चल रही होती थी और वे रॉबिन्सन क्रूसो के साथ दुर्घटनाग्रस्त जहाज़ में से बचकर सूने द्वीप पर चढ़ते थे, उसके साथ मिलकर प्रकृति के साथ संघर्ष की सब कठिनाइयाँ सहते थे। 'कथालोक' में हमने एंडरसन, टॉलस्टॉय, उशीन्सकी, ग्रिम बंधुओं और सोवियत लेखकों कोर्नेई चुकोव्स्की तथा सुमईल मर्शाक की लिखी सारी बालकथाएँ पढ़ डालीं। कथा–कहानियों में भलाई और बुराई, सच्चाई और झूठ, ईमानदारी और बेईमानी के जो नैतिक विचार निहित होते हैं, उन्हें इंसान केवल तभी आत्मसात् करता है, जब ये कथा–कहानियाँ बचपन में पढ़ी गई हों। कथा–कहानियाँ तो होती ही बच्चों के लिए हैं।

हमारा पठन–पाठन भी मौलिक ही था– यहाँ चर्चित बालकथाएँ और कहानियाँ मुझे कंठस्थ थीं। किताब मैं केवल इसलिए हाथ में लेता था कि बच्चे उसमें बने चित्र देख सकें। कहानियाँ सुनने–सुनाने की ही भाँति, पठन–पाठन भी बच्चों में नेक मानवीय भावनाएँ जगाने, उन्हें विवेकशील बनाने का सशक्त साधन था।

बचपन में पठन–पाठन सर्वप्रथम हृदय को सँवारता है– यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है– उदात्त मानवीय विचार बालहृदय के अंतरंग तारों को स्पर्श करते हैं। उदात्त विचारों को उजागर करने वाला शब्द बालहृदय में सदा के लिए मानवीयता के कण छोड़ जाता है और ये मिलकर ही उसका ईमान, उसके अंत:करण का स्वर बनते है।

❑❑❑